कहीं प्रतिक्रांति में तब्दील न हो जाए सदिच्छाओं की धारा

माननीय उच्चतम न्यायालय ने दहेज उत्पीड़न कानून की धारा ४९८ए का दुरुपयोग रोकने हेतु हाल ही में नए दिशानिर्देश जारी किए हैं। इससे पूर्व भी वह ४९८ए के अंतर्गत फर्जी मुकदमों की बढ़ती तादाद और दुरुपयोग को लेकर चिंता व्यक्त करते हुए इसे 'कानूनी आतंकवाद' तक कह चुका है। नए दिशानिर्देश के मुताबिक सामान्य परिस्थिति में मुकादमा दर्ज होते ही पति या ससुराल वालों की सीधे गिरफ्तारी नहीं होगी। सुनवाई के दौरान अदालत में हर तिथि पर उनकी उपस्थिति भी अनिवार्य नहीं होगी। यदि कोई आरोपी विदेश में रह रहा है तो सामान्यतः रेड कार्नर नोटिस जारी नहीं होगा, उसका पासपोर्ट जब्त नहीं होगा। प्रत्येक जिले में 'परिवार कल्याण समिति' बनाई जाएगी, जिसमें तीन सदस्य होंगे। ये सदस्य सामाजिक कार्यकर्ता, अधिकारियों की पत्नियाँ, सेवानिवृत्त अधिकारी-कर्मचारी, विधि क्षेत्र के स्वयंसेवक या अन्य उपयुक्त इच्छुक व्यक्ति होंगे। लेकिन ये लोग साक्ष्य नहीं बन सकते। यह समिति जिला विधिक सेवा प्राधिकरण के अधीनस्थ होगी, जिसके अध्यक्ष जिला एवं सत्र न्यायाधीश होंगे। समिति के सदस्यों को बुनियादी तौर पर प्रशिक्षित भी किया जाएगा। जिले भर में ४९८ए के अंतर्गत जो भी मुकदमे पुलिस अथवा मजिस्ट्रेट के यहाँ दायर होंगे, वे सब इस समिति के समक्ष भेजे जाएँगे। समिति दोनों पक्षों से संवाद कर एक महीने के अंदर अपनी तथ्यात्मक रिपोर्ट व राय प्राधिकरण को सौंपेगी। इस रिपोर्ट पर संबंधित जाँच अधिकारी या मजिस्ट्रेट द्वारा आगे की कार्यवाही सुनिश्चित की जाएगी। जमानत याचिका का निबटारा शीघ्रातिशीघ्र शिकायतकर्ता या पब्लिक प्रोस्क्यूटर को एक दिन की पूर्व सूचना देकर किया जाएगा। सुनवाई के समय आरोपों की सत्यता, तुरंत गिरफ्तारी का औचित्य, आरोपी व्यक्तियों की भूमिका व व्यक्तित्व आदि पर समग्रता में विचार करते हुए निर्णय किया जाएगा। समझौता होने की स्थिति में उच्च न्यायालय में जाने की बजाय बाहर ही मामला सुलटा लिया जाएगा। लेकिन ये नए दिशानिर्देश महिला के मारे जाने या चोटिल होने की दशा में लागू नहीं होंगे।

अदालतें पहले भी इस दिशा में बुनियादी दिशानिर्देश देती रही हैं। बड़े पैमाने पर ४९८ए के अंतर्गत मुकदमे दर्ज होने, अच्छे-भले व्यक्तियों तथा परिवारों के फँसने एवं प्रताड़ित होने, अनेक संगठनों द्वारा इसके खिलाफ आवाज उठाने और समय-समय पर की गई अदालती टिप्पणियों के कारण इसने सबका ध्यान खींचा है। केन्द्र सरकार और राष्ट्रीय महिला आयोग भी इस बात को लेकर चिंतित है, पर इस धारा के गलत इस्तेमाल पर ठोस रोक लगने में अभी तक कामयाबी नहीं मिली है। फर्जी मामला दर्ज कराने वालों पर जुर्माना लगाकर ब्लैकलिस्टेड करने और कमाऊ ही नहीं, कमाने लायक पत्नियों को गुजारा भत्ता से वंचित रखने की त्वरित जरूरत सामने आने के बावजूद इस कानून का दुरुपयोग दिनोंदिन व्यापक होता जा रहा है। ऊपरी न्यायालय की टिप्पणियाँ भी मात्र टिप्पणी बनकर रह जाती हैं कि केवल प्राथमिकी व आरोपों के आधार पर मुकादमा नहीं चल सकता। निचली अदालतों में जो ढर्रा बन गया है, उससे इस कानून की आड़ में ब्लैकमेल करने से लेकर संपत्ति कब्जाने, धन उगाही करने तथा जानबूझकर फँसाने व जिंदगी खराब करने का कार्य चल रहा है। इसी तीन अगस्त के अपने लेख में क्षमा शर्मा ने बड़ी बेबाकी से दर्शाया है कि वास्तव में जो महिला पीड़ित है, उसे न्याय कम मिलता है, जबकि कपटी महिलाएँ और उनके कंधे पर बंदूक रखकर अपना उल्लू सीधा करने वाले इसका बेजा फायदा उठाते हैं। औरतों की रक्षा के लिए बनाया गया यह कानून औरतों को भी सताने लगा है।

नियम-कानून जब सुपरिवर्तन के अस्त्र नहीं बनते, तब उन कानूनों के प्रति आक्रोश उत्पन्न

होता है। भारतीय दंड संहिता की धारा ४९८ए के साथ ऐसा ही हुआ है। यह बनाया तो गया था दहेज उत्पीड़न और घरेलू हिंसा से बेटियों-बहुओं को बचाने के निमित्त, किंतु समय बीतने के साथ यह पति-पत्नी के अन्यान्य समस्याओं को सुलझाने-उलझाने का प्लेटफॉर्म बनता गया। दहेज उत्पीड़न और घरेलू हिंसा से बिल्कुल परे भी जहाँ पत्नी-बहू की समस्या बिल्कुल अलग कारण से होती है, वहाँ भी सारी परेशानी को ४९८ए के साँचे में ढालकर मामला चलाया जाता है। इसके लिए दहेज उत्पीड़न को दर्शाने वाला काल्पनिक इतिवृत्त या स्क्रिप्ट तैयार की जाती है। जो लोग दहेज न लेने-देने की शर्त पर सादगी से विवाह किए होते हैं और किन्हीं अन्य कारणों से उनके दाम्पत्य जीवन में कटुता आती है, उनके ऊपर भी दहेज उत्पीड़न का मुकदमा अदालतों में चलता है। वे तब तक दहेज के लिए प्रताड़ित करने वाले दोषी बने रहते हैं, जब तक कि बरी न हो जाएँ और जरूरी नहीं कि बरी हो ही जाएँ।

हर मामला अपने आप में विशेष होता है, तो फिर एक ही धारा में सबको रखकर सुनवाई क्यों? किसी भी कठिनाई को गढ़कर ४९८ए के अंतर्गत रख देने से मूल समस्या हमेशा के लिए पर्दे में रहकर अनसुलझी रहती है। अतः मूल समस्या अदालत में जानी चाहिए। यह हो सकता है कि उस पर पहले से कानून न हो, परंतु बिना कानून के भी न्याय संभव है; किंतु इसके लिए न्यायाधीशों में उच्च कोटि का विवेक और पूर्ण निष्पक्षता अपेक्षित होगी। जहाँ किसी अकल्पित स्थिति के लिए पूर्वनिर्मित कानून नहीं है, वहाँ भी किसी को उत्पीड़ित होने और अनाचार-अत्याचार करने की छूट नहीं होती। जीवन व्यवहार के प्रत्येक विषय को लिखित रूप देना संभव नहीं है। आज भी अलिखित परंपराओं से इंग्लैंड का नियम-कानून बहुत हद तक निर्धारित होता है, पर वहाँ अधिक समस्या नहीं होती, जबकि भारत में बहुत कुछ लिखित में स्पष्ट है, फिर भी अलग-अलग नासमझ या स्वार्थी व्याख्याओं के कारण कठिनाई उत्पन्न होती है। नियम-कानून की व्याख्या का सर्वोच्च अधिकार न्यायालय को प्राप्त है। वहाँ भी न्यायाधीशों की राय कई संवेदनशील मुद्दों पर न केवल अलग-अलग होती है, बल्कि एक-दूसरे के विपरीत भी होती है। एक ही तरह के मामले में विभिन्न अदालतों का निर्णय भिन्न-भिन्न तरह का और परस्पर विरुद्ध भी होता है, हालाँकि सबका संविधान और कानून के अनुरूप न्याय का दावा रहता है।

४९८ए का मुकदमा करने वाली पत्नी या बहू होती है, अतः आरोपों को पहली नजर में ही सही मान लेने की परिपाटी प्रचलित है। यौन उत्पीड़न और बलात्कार का आरोप लगाए जाने पर भी ऐसा ही होता है। दोनों ही स्थितियों में यह माना जाता है कि कोई बहू-पत्नी अपने पति और उसके परिजनों के खिलाफ तथा कोई स्त्री किसी पुरुष पर यौन अपराध का आरोप लगाते हुए यों ही इतनी दूर तक नहीं जा सकती। यह काफी हद तक ठीक भी है। निसंदेह मामला झूठा हो या सच्चा - कोई-न-कोई बात तो होती है, जिसकी तह तक जाना अपराध-उन्मूलन की दिशा में कारगर कदम होगा। लेकिन पहले किसी भी कारण से सहमति से संबंध बनाना और बाद में अन्य या उसी कारण से बलात्कार का रूप देना कदापि उचित नहीं है। यहाँ या तो स्त्री-पुरुष दोनों ही दोषी होते हैं अथवा दोनों दोषी नहीं होते, लेकिन दोषी केवल पुरुष को माना जाता है। चूँकि ४९८ए गैरजमानती मुकदमा है, इसलिए जमानत के लिए निचली अदालतों से लेकर उच्च न्यायालय और कई बार सर्वोच्च न्यायालय तक का चक्कर लगाना भारी श्रमसाध्य एवं अर्थसाध्य कार्य है। यह साधारण व आर्थिक रूप से कमजोर लोगों के बूते से बाहर की बात होती है। सर्वोच्च न्यायालय में किसी छोटे मामले को ले जाना भर लाखों रुपये का बजट चाहता है। ऐसे मामलों में सामान्यतः जमानत निचली अदालतों में मिलती भी नहीं।

जमानत के लिए न्यायालय गए आरोपी को जमानत के एवज में पत्नी को मासिक रकम देने का आदेश प्राप्त होता है, जबकि भुगतने वाले की क्षमता से अधिक भारी पड़ने वाली कोई भी सजा या आदेश न्यायिक नहीं होता। यदि आरोप झूठा है, तो यह आर्थिक भुगतान पति के लिए जले पर मिर्च की तरह होता है, वहीं स्त्री के लिए पारितोषिक-पुरस्कार सदृश; जबकि झूठा मुकदमा दायर करना ही अपने आप में संगीन अपराध है। कई बार जमानत के वक्त सत्यता-असत्यता जाँचे-परखे बिना सुलह-समझौते के लिए प्रेरित किया जाता है, जहाँ पति पक्ष से न्यायिक परिधि के भीतर रुपयों की बोली लगवाई जाती है। झूठे आरोपों के रहते पत्नी के साथ और सच्चे आरोपों के रहते पति के साथ रहना हो सकता है? एकसाथ रहने पर आरोपों के साथ न्याय कैसे संभव है? आरोपित होने पर मंत्रियों को इस्तीफा देना पड़ता है, क्योंकि पद पर रहने से जाँच प्रभावित होने का हल्ला मचता है। इसलिए समझौते की कोई भी कोशिश आरोपों की गंभीरता जाँचने के बाद ही होनी चाहिए। दंपती भी आरोपों से निकलने के बाद ही पति-पत्नी रूप में एकसाथ रहने के हकदार हो सकते हैं, आरोपों के रहते कतई नहीं। शायद यह सब रिश्ते को बचाए रखने के लिए किया जाता है, पर झूठे-सच्चे आरोपों-अपराधों की नींव पर रिश्ता कैसे टिक सकता है?

तलाक से पहले केस का निपटारा होना चाहिए, लेकिन पति-पत्नी में तलाक हो जाने के बाद भी ४९८ए के अंतर्गत मुकदमा चलते रहने के उदाहरण मिलते हैं। संसार में कहीं भी कानून का ऐसा विचित्र अनुपालन नहीं होता। इसलिए अमेरिका, कनाडा जैसे देश अपने नागरिकों को इस दहेज प्रताड़ना और घरेलू हिंसा कानून के प्रति आगाह करते रहते हैं कि भारतीय अदालतों में ऐसे मामलों में एक बार फँस जाने पर निकलने में बहुत अधिक रुपयों की जरूरत पड़ती है, फिर भी निकल पाना आसान नहीं होता। व्यक्ति के सारे नागरिक व मौलिक अधिकार खत्म हो जाते हैं, इंसानी मूल्यों और मानवीय अधिकारों से वंचित होना पड़ता है। रिश्तों-संबंधों का अलगाव तो फिर भी आदमी झेल लेता है, परंतु आत्मिक जीवन मूल्यों के टूटने का विक्षोभ तो रिश्तों के अंदर और बाहर सदैव सालता है। भारत में स्त्री-पुरुष की आत्महत्या का अनुपात २ : ३ है, जिनमें लगभग ५० प्रतिशत विवाहित पुरुष होते हैं, जबकि उसकी आधी २५ प्रतिशत विवाहित महिलाएँ होती हैं। इसका कारण यह भी है कि कुछ मामलों में निर्दोष पुरुष को न्याय देने वाली न्यायिक व्यवस्था नहीं है। न्यायालय से भी न्याय की उम्मीद नहीं बँधती, तब पुरुष आत्महंता बनता है या फिर हिंसा-अपराध द्वारा अपने पक्ष में न्याय खोजने की कोशिश करता है। वस्तुतः इस कानून में उतना खोट नहीं, जितना गलत ढंग से गलत जगह इसका इस्तेमाल होता है। किसी पुरुष या स्त्री के प्रति होने वाला जाना-अनजाना अन्याय बाकी दूसरों के लिए न्यायपूर्ण कभी नहीं हो सकता। इसलिए ४९८ए के दुरुपयोग के इन प्रामाणिक पक्षों के बावजूद यह मानने में तनिक भी हिचक नहीं होनी चाहिए कि इसके सदुपयोग के भी इनसे कई गुना अधिक पक्ष होंगे।

किसी भी कानून के साथ नैसर्गिक न्याय यही है कि उसका सत्य की पृष्ठभूमि में अनुपालन हो, झूठ की पृष्ठभूमि पर नहीं; अन्यथा एक जगह कुछ लोगों को सही-गलत राहत देगा, वहीं दूसरी जगह दुरुपयोग के कारण बहुतों को परेशान भी करेगा। बेशक कहीं भी स्त्री के उत्पीड़न से परिवार-समाज मजबूत नहीं हो सकता। समाज में पुरुषसत्तात्मक मूल्यों का वर्चस्व है, किंतु अब महिलाओं की सत्ता दिनोंदिन हर क्षेत्र में बढ़ती जा रही है। लेकिन जहाँ उनकी सत्ता है, वहाँ भी समस्याएँ जस-की-तस या नए रूप में सामने हैं, क्योंकि सत्ता के बिना ठीक से जीने की कला विकसित नहीं हुई है, इसलिए कहीं सत्ता के प्रति

सकारात्मक नजरिये के कारण, तो कहीं स्वसत्ता के अभाव में नकारात्मक नजरिये की वजह से सत्ता की सत्ता बनी हुई है।

४९८ए का मामला न्यायिक सुधार से अभिन्नतः जुड़ा है। सुनवाई की प्रक्रिया को सीधा व आसान बनाकर आरोप और न्यायपूर्ण निर्णय के बीच के अवरोधकों को खत्म करना न्यायिक सुधार की पहली आवश्यकता है। न्यायालय को त्वरित, सहज व सस्ता न्याय के लिए जिम्मेदार रहना है, न कि पैसा कमाने का व्यवसाय-स्थल होना है। हरियाणा-पंजाब के मुख्य न्यायाधीश और बिहार एवं झारखंड के राज्यपाल रहे एम. रामा जॉइस के अनुसार, ''न्यायपालिका में योग्यता के आधार पर न्यायाधीशों की नियुक्ति न होने पर अकुशलता सामने आती है, अनावश्यक विलंब और एकदम गलत निर्णय किए जाते हैं, कुछएक जगह प्रक्रिया की सरलता और साक्ष्य संबंधी तकनीकी नियमों का लाभ उठाकर मुकदमे को टालनें में अधिवक्ताओं की रुचि या स्वार्थ निहित रहता है। असाधारण खर्च, न्यायाधीशों की नियुक्ति में अनावश्यक विलंब और बाकी जगह की तरह न्यायपालिका में भी व्याप्त भ्रष्टाचार के कारण विश्वास घटा है। चयन व नियुक्ति हितकारी संदर्भों में की जाती है, जिससे कई सक्षम व्यक्तियों की नियुक्ति नहीं हो पाती। गलत लोगों की नियुक्ति से अच्छी न्यायपालिका का गठन नामुमकिन है।'' बिहार विधानसभा के अध्यक्ष विजय कुमार चौधरी ने भी कुछ व्यावहारिक सुझाव दिए हैं, जिनमें जजों के लिए संपत्ति की सार्वजनिक घोषणा और सुनवाई की वीडियो रिकार्डिंग की जरूरत शामिल है। लंबे समय की कोशिश के बावजूद उच्चतर स्तर पर न्यायाधीशों की नियुक्ति प्रक्रिया को लेकर केन्द्र सरकार और सर्वोच्च न्यायालय में अभी तक एकराय नहीं बन पाई है। दूसरे शब्दों में, सर्वोच्च न्यायालय नियुक्ति पर अपना नियंत्रण कमजोर होने नहीं देना चाहता। इसमें बुराई भी नहीं है, लेकिन यह पारदर्शी तो हो। ताजा खबर है कि निचली अदालतों में न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के अधीन परीक्षा कराने के केन्द्र सरकार के सुझाव पर नौ उच्च न्यायालयों ने असहमति जाहिर की है, आठ उच्च न्यायालयों ने इसके प्रस्ताव में कुछ-कुछ बदलाव चाहा है, जबकि केवल दो ने समर्थन किया है। इससे भी न्यायिक सुधार की दिशा में अच्छा संकेत नहीं जाता।

महात्मा गाँधी ने 'हिन्द स्वराज' में लिखा है कि ''अदालतें भले लोगों के लिए नहीं हैं। जिन्हें अपनी सत्ता कायम रखनी होती है, वे अदालतों के जरिए लोगों को वश में रखते हैं। लोग अगर अपने झगड़े स्वयं निबटा लें तो तीसरा आदमी उन पर अपनी सत्ता नहीं जमा सकता। क्या कोई कह सकेगा कि तीसरा आदमी जो फैसला देता है, वह फैसला सही ही होता है? कौन सच्चा है और कौन झूठा - यह दोनों पक्ष के लोग ज्यादा जानते हैं।'' गाँधी जी की इस बात पर बिल्कुल अमल नहीं हुआ, क्योंकि मुकदमों की संख्या में बेतहाशा वृद्धि हुई है; हाँ, झगड़ा कर-करके अपना झगड़ा निपटाने के प्रयत्न में लोग उसे अंतहीन जरूर बना लेते हैं। अस्तु, ४९८ए जैसे मामले सुलझाने में गाँधी जी का आप्त-वचन काफी कारगर हो सकता है, जिसमें दो विकल्प होंगे। पहला, पति-पत्नी के प्रेमपूर्वक साथ रहने का और दूसरा, प्रेमपूर्वक ही अलग हो जाने का। अलग हो रहे समृद्ध पार्टनर के लिए अपने दूसरे पार्टनर को यथासंभव भरपूर आर्थिक सहयोग देना मानवीय जिम्मेदारी है। लेकिन जिन्हें न प्रेम से साथ रहना हो और न प्रेम से अलग होना हो, उनके लिए ४९८ए की अहमियत फिर भी बरकरार रहेगी!